''गाँधीवाद नहीं है'', ''गाँधीवाद अमर रहेगा''

डॉ० अर्चना पाण्डेय
141(222) रैदोपुर, मोहल्ला, आजमगढ़

गाँधी जी का जीवन क्रम, विचार एवं कार्य–पद्धतियों का विश्व दर्शन के इतिहास में अपना विशिष्ट स्थान है। उन्होंने सामाजिक एवं राजनैतिक समस्याओं के समाधान के लिए एक विशेष प्रकार की कार्य–पद्धति का प्रतिपादन किया। गांधी जी ने किसी नवीन विचारधारा, तत्व दर्शन या जीवन दर्शन का प्रतिपादन नहीं किया बल्कि शताब्दियों से चले आ रहे सत्य, अहिंसा, सेवा, प्रेम, त्याग, सहिष्णुता, आस्तेय, अपरिग्रह, आत्म संयम आदि नैतिक गुणों–मूल्यों की पुर्नस्थापना की।[1] उन्होंने प्राचीन भारतीय सांस्कृतिक परम्परा और आध्यात्मिक जीवन दृष्टि को आधुनिक परिस्थितियों के अनुकूल परिवर्द्धित–परिष्कृत कर उसके व्यवहार पर बल दिया। उनका सरल जीवन, नैतिकता के बंधन, जनमानस से तादात्मय स्थापित करने जैसे गुणों ने भारतीयों के मन में उनके लिए विशिष्ट स्थान बना दिया। गाँधी जी का गरिमामय बहुआयामी व्यक्तित्व, विचार दर्शन और आचरण लोगों के लिए मापदण्ड और अनुकरणीय बन गया।

व्यक्ति या व्यक्तित्व और आचरण उसके विचार–दर्शन से ही निर्मित होता है। ऐसे में गाँधी जी के चमत्कारिक व्यक्तित्व के पीछे छिपे दर्शन ने सभी का ध्यान अपनी ओर आकृष्ट किया। ''गाँधीवाद'' एक नई अवधारणा प्रस्तुत हुई। इसके वाद या सिद्धांत होने पर जहां कई प्रश्न उठे तो कहीं गांधी जी के विचारों को और अधिक पुष्टि मिली। गाँधी जी ने स्वतः एक बार 'गाँधीवाद'' का निषेध करते हुए कहा है–'गाँधीवाद नाम की कोई चीज नहीं है। मैं अपने पीछे कोई संप्रदाय नहीं छोड़ना चाहता, मैंने किसी नवीन सिद्धांत को उत्पन्न नहीं किया है, मैंने केवल शाश्वत सत्य को दैनिक समस्याओं के समाधान में प्रयुक्त किया है। सत्य और अहिंसा उतने ही पुरातन है जितनी पुरानी पहाड़ियाँ हैं। मैंने केवल उनका विस्तृत क्षेत्र में प्रयोग करने का प्रयास किया है। यदि कोई मेरा दर्शन है, जिसे वाद की संज्ञा दी जा सकती है, तो वह मेरे कथनों या उक्तियों में सन्निहित है। परन्तु आप उसे वाद नही कह सकते। इसके संबंध में कोई वाद नहीं है।''[2] यह बात सही है कि एक दूसरे संदर्भ में इस कथन से बिल्कुल भिन्न भी कथन मिलता है। करॉची कांग्रेस के मौके पर 25 मार्च 1931 को अपने कार्यक्रमों का विरोध करने वालों को उत्तर देते हुए गांधी जी ने कहा थाः ''गांधी मर सकता है किंतु गांधीवाद अमर रहेगा।''[3]

कुछ विचारकों ने गाँधी जी के विचारों को किसी वाद से जोड़ना उचित नहीं समझा। उनके अनुसार ''वाद'' या अंग्रेजी के 'इज्म' शब्द का प्रयोग विशेष अर्थों में होता है, यथा हिन्दी शब्द कोष में 'वाद' का प्रयोग तत्वज्ञों या विशेषज्ञों द्वारा निर्धारित सिद्धांत के रूप में हुआ है।[4] जैसे–'छायावाद', 'रहस्यवाद', 'साम्यवाद' इत्यादि। स्वतंत्र रूप से 'वाद' का प्रयोग 'उक्ति' या कथन के अर्थ में होता है। एक दूसरे अर्थ में यह कला, विज्ञान या कल्पना–मूलक किसी भी विषय पर नियमों एवं सिद्धांतों के आधार पर किया गया सुव्यवस्थित मत है, जो कुछ क्षेत्रों में प्रामाणिक समझा जाता है, जैसे विकासवाद, सापेक्षवाद इत्यादि। इसके अतिरिक्त 'वाद' का प्रयोग 'तर्क', शास्त्रार्थ, किंवदंती तथा न्यायालय में उपस्थित किये गये 'अभियोग' के अर्थ में भी होता है।[5]

आचार्य कृपलानी, संत विनोबा जैसे सहकर्मी और जैनेन्द्र जैसे विचारकों ने कुछ इसी प्रकार के तर्कों द्वारा गांधीवाद जैसे किसी सिद्धांत को नकारा। इसे खंडित वाद–विवाद का विषय न मानकर गांधी के विचारों को सर्वोदय–दर्शन या गांधी–मार्ग जैसे शब्दों से संबोधित कर इसे संपूर्ण जीवन–दर्शन या जीवन शैली माना। इसके विपरीत श्री जय प्रकाश नारायण, श्री रंगनाथ रामचन्द्र दिवाकर, डॉ० वी पट्टाभि सीतारमैया, श्री हुमायू कबीर एवं डॉ० राम मनोहर लोहिया आदि चितंको ने 'गांधीवाद' को स्वीकार किया है। सम्यक रूप से देखा जाय तो गाँधी जी ने विभिन्न विचारों का समन्वय किया। अपनी आत्मकथा में उन्होंने स्वयं स्वीकार किया कि उनके जीवन पर तीन व्यक्तियों ने गहरा असर डाला है–रामचन्द्र भाई ने अपने संजीव संसर्ग से, टालस्टाय ने ''स्वर्ग तुम्हारे हृदय में है ''नामक पुस्तक द्वारा और रस्किन ने–''अन टू दिलास्ट'' सर्वोदय नामक पुस्तक द्वारा।[6] इस पुस्तक का गांधी जी पर अत्यंत चमत्कारी और निर्णायक

प्रभाव पड़ा। वस्तुतः गांधी जी की चिन्तनधारा की आधारशिला 'सत्य' रहा। वह मानते थे कि सदैव सत्य की विजय होती है असत्य की नहीं। जीवन में अनेक बार, इस लौकिक जगत में असत्य की विजय का अहसास होता है परन्तु अंतिम रूप वह असत्य पराजित ही होती है।

इस तथ्य की व्यावहारिकता को लोगों के समक्ष प्रमाणित करने के लिए उन्होंने सदैव इसके साथ प्रयोग किया। कहते हैं कि गाँधी जी स्वयं एक चलती–फिरती प्रयोगशाला थे और उन्होंने सदैव स्वयं पर पहले प्रयोग किया। यद्यपि कि उनकी प्रयोग धर्मिता अतिवादी भी थी। उन्होंने सत्य अनुसंधान में अपने परिवार को भी उसी कठोरता से सम्मिलित किया जिन कठोर नैतिकता का वह स्वयं पालन करते थे। गाँधी जी के अनुसार निरन्तर अभ्यास तथा वैराग्य द्वारा ही सत्य रूपी कामधेनु और पारसमणि को प्राप्त किया जा सकता है। सत्य की प्रतीति सरल नहीं है। सत्य प्राप्ति का मार्ग खँड़े की धार के समान नुकीला और संकरा है, जिस पर चलने वाला सत्य शोधार्थी जरा सा चूकते ही प्राणों से हाथ धो सकता है। गांधी जी ने सत्य का प्रयोग अलौकिक अर्थ में न करके सामाजिक अर्थ में किया। अतः उन्होंने परम्परावादी प्रतीकों के साथ आधुनिक सामाजिक सुधार किए।

गाँधी जी का जीवन दर्शन मौलिक रूप में आध्यात्मिक था। व्यापक रूप में देखा जाए तो गीता से प्रभावित होकर उन्होंने सत्य, अहिंसा और सत्याग्रह को कर्मों का आधार बनाया। गीता दर्शन से प्रभावित होकर ही गाँधी जी सब में ईश्वर का अंश मानते थे। गाँधी जी के अनुसार शोषण के प्रति शोषित का भाव द्वेष अथवा कटुतापूर्ण नहीं होना चाहिए। इसके लिए वह सत्याग्रह को सबसे बड़ा हथियार मानते थे जिसका अंश वह स्वयं हैं। यही कारण है कि उसके विरोध में कटुता या द्वेष का लेश भी नहीं होता।[7] इस भाव को ही गाँधी जी ने व्यक्त किया कि–''पाप से घृणा करो पापी ने नहीं।'' गाँधी जी मानते थे कि उनके सत्य अहिंसा के नियम का गीता के निष्काम कर्मयोग के साथ कोई विरोध नहीं है। गाँधी जी के अनुसार, ''गीता की शिक्षा को व्यवहार में लाने वाले को अपने आप सत्य और अहिंसा का पालन करना पड़ता है। फलासक्ति के बिना न तो मनुष्य को असत्य बोलने का लालच होता है, नहिंसा करने का।[7] उन्होंने युंगों पुरानी सांस्कृतिक विरासत की व्यावहारिक जीवन में उपयोगिता सिद्ध कर दिया। इस रूप में गाँधी दर्शन उपनिषद के सर्वात्मवाद से प्रभावित भी लगता है जिसका अर्थ है कि जीव ईश्वर रूप और ईश्वर अंश है तथा ईश्वर विश्व रूप है।

गाँधीवाद में अहिंसा पर भी विशेष जोर होता है परन्तु प्रायः इसका अर्थ मात्र हिंसा के अभाव को मान लिया जाता है। वास्तविक रूप में अहिंसा एक शक्ति के साथ–साथ एक भावनात्मक रूप है जो प्राणी मात्र से प्रेम करना सिखाती है। यह प्रेम को प्रेरित भी करती है जो राग, द्वेष, मोह और स्वार्थ से परे हो। गांधी जी के अहिंसा भाव में कायरता को कोई स्थान नहीं था। उनका मानना था कि एक हिंसक व्यक्ति अहिंसक बन सकता है परन्तु एक कायर व्यक्ति नहीं क्योंकि अहिंसा वीर–धैर्यवान का गुण होता है, एक कायर व्यक्ति में यह गुण सम्भव नहीं। वह अहिंसा को वीरों का धर्म मानते थे। 1920 ई० में उन्होंने स्पष्ट कहा था कि कायरता और हिंसा में से किसी एक को चुनने का प्रश्न उठने पर वे हिंसा को चुनने की सलाह देंगे।[9] गाँधी जी आत्म–रक्षा और स्त्रियों के सम्मान की रक्षा के लिए हिंसा का प्रयोग की अनुमति दे देते हैं। अतः यह प्रश्नचिन्ह भी लगता है कि सदैव अहिंसा का उपदेश देने वाले महात्मा का व्यक्तित्व कही–कहीं हिंसक भी रहा है। परंतु यह सदैव नहीं बल्कि सापेक्ष परिस्थितियों में ही मान्य था।'' यह भी प्रश्न उठता है कि अपनी बात मनवाने के लिए वह' अन्न–जल त्याग देने, स्वयं को समाप्त कर लेने जैसी बात करते थे। मरने या मारने की बातों का विश्लेषण करें तो उसका अर्थ भी हिंसा ही है क्योंकि खुद को खत्म करने की भावना में बहुत सूक्ष्म रूप में हिंसा भाव ही होता है। इस विषय में यह मत भी व्यक्त किया जाता है कि अहिंसा व्यक्तिगत साधना है। इसका सामाजिक, राष्ट्रीय और अर्न्तराष्ट्रीय स्तर पर प्रयोग करना संभव नहीं है। लेकिन गाँधी जी के शब्दों में अहिंसा केवल व्यक्तिगत नही बल्कि सामाजिक गुण भी है। इसे अन्य गुणों की भांति अपनाना चाहिए।

वस्तुतः गाँधी जी के लिए व्यक्तिगत पवित्रता और राजनीतिक सफलता अलग–अलग नहीं थी। क्योंकि उनकी राजनीति का आधार अहिंसा थी और अहिंसा की सफलता इस बात पर निर्भर करती है कि आप दूसरे की नीति–बोध को कितना जगा सकते है और नीति बोध जगाना इस बात पर निर्भर करता है कि आपने स्वयं को दुनिया में कितना साधा है। यही कारण था कि उन्होंने अपने सामने

भ्रष्टाचार और नृशंसता दूसरों को नहीं, स्वयं को दोषी मानते थे। सामाजिक, आर्थिक, राजनैतिक एवं धार्मिक समानता की भावना भी अहिंसा के ही मूर्त परिणाम है। प्रजातंत्र एवं रामराज्य की कल्पना का आधार अहिंसा अर्थात प्रेम ही है।

गाँधीवाद पर विचार करते हुए गाँधी जी के अंतिम व्रत ब्रह्मचर्य की भूमिका पर विचार किए बिना अधूरा रहेगा। गांधी जी हिन्दू शास्त्र की उक्ति 'ब्रह्मचर्येण तपसा देवा मृत्युपाहनत पर विश्वास करते थे। वह यहां तक मानते थे कि बिना ब्रह्मचर्य के अहिंसा का व्रत संभव नहीं है। प्रायः ब्रह्मचर्य का अर्थ इसके संकुचित रूप में लिया जाता है। जननेन्द्रिया विरोध को ही मात्र ब्रह्मचर्य मान लिया जाता है लेकिन गांधी जी इस व्याख्या को अधूरी और गलत मानते थे उनके अनुसार विषय मात्र का विरोध ही ब्रह्मचर्य है ब्रह्म की ओर ले जाने वाली वस्तु ही ब्रह्मचर्य है। मन वचन और कर्म के पूर्ण नियंत्रण से ही ब्रह्मचर्य संभव है। गांधी जी ने अपने ब्रह्मचर्य प्रयोगों के तीन कारण स्वयं ही गिनाये है। इस का संबंध 'मोक्ष' से है, दूसरे का भारत की स्वतंत्रता और तीसरे का स्त्री–पुरूषों का संबंधो से है। इसका तात्पर्य है कि उनका ब्रह्मचर्य सिर्फ यौन–इच्छाओं का निरोध मात्र नहीं बल्कि हिंसा की प्रत्येक प्रेरणा से मुक्ति था।

'सत्याग्रह' के विषय में गाँधी जी का विचार था कि अहिंसक साधनों द्वारा सत्य के लिए साधना ही सत्याग्रह है।[10] अर्थात् यह मात्र अहिंसक प्रतिरोध नहीं है। इसमें अधर्म पर धर्म से, हिंसा पर अहिंसा से द्वेष पर प्रेम से तथा शक्तिबल को आत्म बल द्वारा विजय प्राप्त करनी होती है। प्रतिपक्षी के अंदर मानवता की भावना जगाने का प्रयास करना पड़ता है। इसी आधार पर गांधी जी ने साध्य और साधन की एकता और उनकी पवित्रता पर बल दिया। गांधी जी के अनुसार साध्य और साधन में वही घनिष्ठ संबंध होता है जो बीज और वृक्ष में होता है। शैतान को भज कर ईश्वर भजन का फल नहीं पाया जा सकता।[11] अर्थात् केवल साध्य ही पवित्र नहीं होना चाहिए बल्कि हमने उसे जिस साधन से प्राप्त किया वह भी पवित्र होना चाहिए। निष्क्रिय प्रतिरोध में शोषक के प्रति आक्रोश का भाव होता है जबकि सत्याग्रह में शोषक के प्रति एक मानवीय भाव रखा जाता है।

आर्थिक क्षेत्र में गाँधी जी के विचारों पर उनके नैतिक–आध्यात्मिक जीवन दर्शन का स्पष्ट प्रभाव हमें देखने को मिलता है। गाँधी जी का मत था कि प्रत्येक व्यक्ति के पास रहने का एक मकान हो, खाने को पर्याप्त तथा संतुलित आहार और पहनने को पर्याप्त खादी हो।[12] वह मानव के जीवन स्तर को एक निश्चित सीमा से ऊपर उठने के पक्षधर नहीं थे क्योंकि उनके मतानुसार ऊँचा जीवन स्तर और आराम व्यक्ति को पाप मार्गों की ओर प्रेरित करता है। इसीलिए वे लोगों से अपनी स्वेच्छा से आवश्यकताओं को घटाने के लिए प्रेरित करते थे और इस भावना को सभ्यता का विकास मानते थे। उन्होंने भारत जैसे अतिविशाल जनसंख्या वाले देश में अधिक मशीनीकरण का विरोध किया। उन्होंने हमेशा कुटीर उद्योग, हथकरधा, को प्रोत्साहन दिया। अपने तर्कों से उन्होंने यह भी सिद्ध करने का प्रयास किया कि वर्तमान शोषण, भुखमरी और मजदूरों के नैतिक पतन का दायित्व समाज व्यवस्था नहीं बल्कि मशीनों पर, सामूहिक उत्पादन पर और औद्योगिकरण पर आधारित है।

स्पष्टतः गाँधी जी का जीवन दर्शन मूलतः आध्यात्मिक है। उन्होंने कोई नए सिद्धांत नहीं दिए परंतु पुराने आध्यात्मिक और नैतिक नियमों को ही उन्होंने कार्य रूप में परिणत कर उन्हें व्यावहारिक रूप दिया। उनके विचारों और आचरण की आधारशिला धर्म और नैतिकता है। गाँधी का 'सत्य' केवल भाषण या विचार ही नहीं अपितु एक जीवन व्यापी सिद्धांत है। इसका अर्थ है वाणी या विचार ही नही अपितु आचरण द्वारा भी सत्य की साधना हो। यही सत्य गांधी जी के चिन्तन का आधार था। उनके शब्दों में, ''परमेश्वर 'सत्य' है यह कहने की अपेक्षा 'सत्य' ही परमेश्वर है कहना अधिक योग्य है।[13]

वस्तुतः गांधी जी ने दुनिया का कोई भी सिद्धांत नहीं दिया बल्कि उन्होंने इसका प्रयोग किया, वह भी स्वयं पर। इसीलिए उन्होंने अपनी आत्मकथा भी 'सत्य के प्रयोग नाम से ही लिखो। यदि हम गांधी जी के आंतरिक व्यक्तित्व पर सूक्ष्म दृष्टि डाले तो उनके आचार–विचार में बड़ी गहराई नजर आती है। गांधीवादी विचारधारा पर लम्बे समय से चिंतन–मनन होता रहा है और होता रहेगा और इस प्रकार के वाद–विवाद उठते रहेंगे। गांधी जी द्वारा किए गए प्रयोगों की सफलता–विफलता, और उनके निर्णय एक खुली किताब है। किसी भी व्यक्ति द्वारा उसे पढ़ने, समझने, विचार–मंथन करने और शोध करने पर अमृत या विष जो भी निकले लेकिन इससे गाँधी जी की समुद्र जैसी गहराई पर कोई फर्क नहीं पड़ता,

अहिंसा और प्रेम से गाँधी जी ने बंगाल की साम्प्रदायिक आग को बुझा दिया था। इसी भावना को व्यक्त करते हुए अंतिम ब्रिटिश वायसराय माउंट बेटन की चिट्ठी के अंश ध्यान देने योग्य है। यह पत्र 26 अगस्त 1947 को उन्होंने महात्मा गांधी को लिखा। इसमें कहा गया कि ''पंजाब में हमारे 55 हजार सिपाही थे लेकिन आया भयावह दंगा। बंगाल में हमारी ताकत बस एक आदमी (गाँधी) था और दंगा रूक गया।

वस्तुतः सत्य, अहिंसा, भौतिक सुखों से निवृत्ति, इत्यादि नैतिक मूल्य, स्वतंत्रता, प्रजातंत्र एव शांति जैसे राजनैतिक मूल्य, जातिभेद, उन्मूलन, नारी–जागरण, सभी धर्मों एवं जातियों की एकता इत्यादि सामाजिक मूल्य–उनके जीवन और शिक्षण के अविभाज्य अंग थे। वे इन आदर्शो द्वारा राजनीतिक तथा सामाजिक लक्ष्य को प्राप्त करने का प्रयास करते थे। चूँकि गांधी जी एक आध्यात्मिक व्यक्ति थे अतः उन्होंने राजनीति और समाज के आदर्श स्वरूप की कल्पना कर उसे किसी बाह्य बंधन में बांधने की बजाय वह स्वयं व्यक्ति के नैतिकता के बंधन में बंधने का समर्थन करते थे। सार रूप में कहा जाए तो सचमुच सत्य और अहिंसा जैसे नैतिक मूल्यों का तात्कालिक सामाजिक समस्याओं के समाधान में प्रयोग गांधी जी ने किया। इसको ही गाँधीवाद' नाम दिया गया।[14] गाँधीवाद, जीवन के अनेक क्षेत्रों में गाँधी के तात्विक, नैतिक, धार्मिक, सामाजिक एवं दार्शनिक मान्यताओं एवं अभिप्रायों के विश्लेषण के रूप में समझा जा सकता है। यद्यपि इसमें सत्य, अहिंसा, आस्तेय इत्यादि प्राचीन नैतिक मूल्य का समावेश अवश्य है। तथापि सत्याग्रह, सर्वोदय, ट्रस्टीशिप, साधन–साध्य की एकता जैसी नवीन अवधारणाएं भी हैं जिनका प्रयोग सम्भवतः इससे पूर्व इतिहास में देखने को नहीं मिला था। गांधी जी ने इसे व्यावहारिक रूप में प्रारंभ कर एक आदर्श की स्थापना की। प्राचीन ऋषि–मुनियों ने सत्य और अहिंसा को वैयक्तिक उत्थान के लिए आवश्यक धर्म समझा था। परंतु गाँधी जी ने इसका क्षेत्र विस्तृत कर दिया। उनके अनुसार यह केवल आत्म शुद्धि का साधन नहीं है, बल्कि इसके द्वारा समाज और राज्य को भी शुद्ध किया जा सकता है। इन अर्थो में गाँधी जी के पुराने शब्दों के प्रयोग के बावजूद इनके अर्थ एवं संगठन में नवीनता है। यह कोरा सिद्धांत नही बल्कि गांधीवाद का संबंध एक व्यवहारिक जीवन से है।

सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

1. डॉ०वी० पट्टाभिसीतारमैया; गाँधी और गाँधीवाद; प्रथम भाग पृ०28
2. Gandhi M.K; My sarvodaya Philosophy, All men are brothers, (Ed.), Krishna Kripalani (Ahmedabad, Navaji van Trust 1960) PP. 61-62.
3. सीता रमैया, बी पट्टाभि; कांग्रेस का इतिहास, हिन्दी स्म्पा० श्री हरिभाउ उपाध्याय (नई दिल्ली; सस्ता साहित्य मंडल 19) खण्ड 1 पृ०363
4. वर्मा, रामचंद्र; (स०) मानक हिन्दी कोश, (प्रयाग' हिन्दी साहित्य सम्मेलन, 1966), पांचवा खण्ड, पृ० 1035
5. उपरोक्त
6. सत्य के प्रयोग अथवा आत्मकथा पृ० 105 (18वाँ संस्करण 1947)
7. किशोरी लाल मशरूवाला; गाँधी विचार दोहन पृ०53
8. गाँधी साहित्य, भाग–3 : पृ० 110 (प्रथम संस्करण 1950)
9. यंग इण्डिया 11.08.20 पृ० 711
10. सहारा समय; 11 मार्च 2006, चंदन श्रीवास्तव का लेख, पृ० 42
11. सर्वोदय तत्व दर्शन पृ० 128
12. हिंद स्वराज 1946 पृ० 51
13 गाँधी साहित्य, भाग–5 धर्मनीति पृ०117
14. E.M.S. Nambudaripad; The Mahatma and the Ism (New Delhi, People's bublishing house, 1959) P. 120